हरि चंद मदन गोपाल और अन्य

बनाम

पंजाब राज्य

6 अक्टूबर 1972

[जे. एम. शेलट, डी.जी. पालेकर, के.के. मैथ्यू, एस.एन. द्विवेदी और वाई.वी. चंद्रचूड़, जे.जे.]

भारतीय स्वतंत्रता (अधिकार, संपत्ति व दायित्व) आदेश, 1947, खण्ड 8(3) व पंजाब विभाजन (अनुबंध) आदेश, 1947, खण्ड 2(डी) - का दायरा- विभाजन से पूर्व के पंजाब प्रांत के साथ किए प्रविष्ट संविदा के सम्बंध में प्रत्यर्थी के प्रति, अपीलार्थी का दायित्व- धारा 63 संविदा अधिनियम- वचनदाता द्वारा वचन के एक हिस्से की माफी, वचनगृहिता की तरफ से प्रतिफल के बिना भी प्रभावी होगी।

सन 1944 के किसी समय अपीलार्थी व तत्कालीन पंजाब प्रांत एक समझोते में प्रविष्ठ हुए जिसके द्वारा कमीशन के भुगतान पर समासोधन अभिकर्ता (खाद्यान्न) के रूप में प्रांत की और से खाद्यान्न की खरीद, बिक्री का कार्य करने के लिए अपीलार्थी सहमत हुआ। अपीलार्थी ने राशन नियंत्रक से चावल का भण्डार प्राप्त किया।

14 अगस्त 1947 को गवर्नर जनरल ने धारा 9(1)(ख) भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए भारतीय स्वतंत्रता (अधिकार, सम्पत्ति व दायित्व) आदेश 1947 जारी किया। उक्त आदेश के 8(3) में यह प्रावधान किया गया है कि यदि पंजाब प्रांत द्वारा कोई संविदा की गई है, यदि वह विशिष्ठ रूप से भारत के पूर्वी पंजाब के उद्देश्य से नहीं है तो उसे पाकिस्तान के पहले के पंजाब प्रांत की तरफ से की गई मानी जावे। उसी दिन, पंजाब प्रास्त के गवर्नर ने पंजाब विभाजन (संविदा)आदेश 1947 भी जारी किया। राज्यपाल के आदेश के खण्ड 02(डी) में यह प्रावधान किया गया है कि प्रत्येक अनुबंध जो राज्यपाल की और से धारा 175 भारत सरकार अधिनियम 1935 के अनसार किया गया है, जहाँ तक यह दोनों प्रांतों, पूर्वी व पश्चिमी पंजाब के क्षेत्रों के लाभ के लिए सेवाए प्रदान करने से सम्बंधित है, यह माना जाएगा कि दोनों प्रांतों की और से दो पृथक अनुबंध किए गए हैं, जिसका प्रभाव प्रत्येक प्रांत में सेवाए प्रदान करने के सम्बंध में भूतलक्षी होगा। पंजाब के राज्यपाल ने दोनों प्रांतों के बीच सामान्य वित्तीय समझोते के लिए एक और आदेश पंजाब विभाजन (परिसम्पत्तियों व देनदारियों का विभाजन) आदेश 1947 जारी किया। चुकि दोनों नए प्रांत किसी समझौते पर नहीं पहुँच सके इसलिए फैडरल कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश ने फैसला सुनाया

जिसके मुताबिक कुल सम्पत्तियों का 60% पाकिस्तान के पश्चिमी पंजाब प्राप्त को मिलेगा तथा भारत के पूर्वी पंजाब प्रांत को 40% मिलेगा।

अपीलार्थी को जो भण्डार आपूर्ति किया गया था उसके सम्बंध में अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी को कुछ भुगतान किया था तथा प्रत्यर्थी पंजाब राज्य ने शेष के लिए अपीलार्थी पर दावा किया। अपीलार्थी ने देयता को अस्वीकार करते हुए यह भी तर्क दिया कि देयता यदि कोई हो तो भी वह मूल देयराशि का 40% तक की सीमा तक ही थी। विचारण न्यायालय ने वाद को सारभूत रूप से डिक्री किया, अपील में उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी द्वारा प्रत्यर्थी को चुकायी जाने वाली राशि को कम कर दिया।

इस न्यायालय में अपील मेंः-

अभिनिर्धारित किया:

(1) अपीलार्थी द्वारा यह तर्क नहीं दिया जा सका कि पाकिस्तान का पश्चिमी पंजाब की सरकारके पक्ष में गवर्नर जनरल के आदेश के खण्ड 8(3) के अन्तर्गत संविदा के तहत उत्पन्न् अधिकारों के आधार पर प्रत्यर्थी को दावा पेश करने का अधिकार नहीं था। गवर्नर के आदेश का खण्ड 2(ए) संविदा पर लागू होता है। यह खण्ड निरंतर दायित्वों की संविदा पर लागू होता है। इस अवधि के दौरान जब अभिकरण की संविदा अस्तित्व में थी उसमें संविदा के पक्षकारों के मध्य प्रधान व अभिकर्ता के सम्बंध निर्मित

किए तथा इन सम्बंधों में परस्पर दायित्व अधिरोपित किए। अपीलार्थी पंजाब प्रांत के लिए समासोधन अभिकर्ता के रूप में सेवाए देने तथा खाद्यान्यों की खरीद व बिक्री करने के लिए वाध्य था। संविदा एक संतुष्ट संविदा नहीं थी बल्कि अपीलार्थी के उपर एक अभिकर्ता के तौर पर संवाऐ प्रदान करने के लिए निरंतर दायित्व अधिरोपित करती थी इसलिए राज्यपाल के आदेश का खण्ड 2(डी) लागू होगा तथा यह खण्ड स्वतः ही एकल व निजी संविदा के दो पृथक संविदा के विभाजन का प्रावधान करता है। (588 सी-एफ;591 ए)

(2) गवर्नर-जनरल के आदेश और गवर्नर के आदेश में दोनों आदेशों का संचालन का क्षेत्र अधिभावी नहीं था, अतः एक में दूसरे पर अधिभावी होने का प्रश्न ही उत्पन्न् नहीं हुआ। [589 जी]

(3) गवर्नर जनरल के आदेश का खंड 8(3) उन सांविधाओ से निपटता है जो भारत सरकार अधिनियम, 1935 की धारा 177(1) की विषय-वस्तु का गठन करने वाली सांविधाओ से निपटता है अर्थात भारत सरकार अधिनियम 1935 लागू होने से पहले की संविदा को पंजाब प्रांत के लिए राज्य परिषद के सचिव द्वारा या उसकी और से की गई मार्च 1937 के बाद धारा 175(3) भारत सरकार अधिनियम 1935 के तहत पंजाब के राज्यपाल के द्वारा या उसकी और से की गई सांविधाओ से इसका कोई लेना देना नहीं है। राज्यपाल के आदेश खंड 2(डी) ऐसे अनुबंधों से निपटता

है जो राज्यपाल द्वारा या उसकी ओर से धारा 175(3) के तहत निष्पादित की गयी। [589 ए-जी]

त्रिपुरा राज्य बनाम पूर्वी बंगाल प्रांत, [1951] एस.सी.आर. 1, पश्चिम बंगाल राज्य बनाम शेख सेराजुद्दीन बैटले [1954] एस.सी.आर. 378, भारत संघ बनाम चमन लाल लीना, [1957) एस.सी.आर. 1039, पश्चिम बंगाल राज्य बनाम बृंदाबन चंद्र प्रमाणिक, ए.आई.आर. 1957 कलकत्ता 44 और सिंधिया स्टीम नेविगेशन कंपनी लिमिटेड बनाम भारत संघ, [1962] 3 एस.सी.आर. 412. में वर्णितानुसार।

(4) (ए) पूर्वी पंजाब और पश्चिमी पंजाब के बीच वित्तीय समायोजन के लिए लाया गया पंच निर्णय प्रांत के एक या अन्य अपीलार्थी जैसे तृतीय पक्ष के दायित्वों के सम्बंध में लागू नहीं होता है, इसने यह निर्देश नहीं दिया था कि किसी तीसरे पक्ष द्वारा देय कोई भी राशि उसके दायित्व के केवल 40% की सीमा तक ही वसूली जावेगी। [591 एफ-जी]

(बी) अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच ऐसा कोई समझौता नहीं था कि पश्चातवर्ती, अपीलार्थी द्वारा देय राशि के 40% तक ही वसूल कर सकता है। पक्षकारों के पत्र व्यवहार से भी ऐसा कोई समझौता होना प्रकट नहीं होता है, वहाँ पर प्रत्यर्थी व विक्रेता के दावों के समझौंते के लिए अपीलार्थी को एक प्रस्ताव दिया गया था किन्तू अपीलार्थी ने प्रस्ताव को बिना शर्त

स्वीकार करने के बजाय वैकल्पिक प्रस्ताव किया जिसके परिणामस्वरूप दोनों पक्षों के बीच कोई समझौता नहीं हुआ, वहाँ पर प्रस्ताव व प्रतिप्रस्ताव की हद से आगे कोई प्रगति नहीं हुई। [591 जी-एच; 592 जी; 593 ए-एफ)

(सी) अपीलार्थी ने ऐसा कोई अभिवचन नहीं किया कि प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी के समक्ष यह दर्शाया हो कि वह पुराने पंजाब प्रांत के खाते नामे राशि के 40% ही वसूल कर सकता हो एवं इससे अधिक राशि का दावा करने के लिए विबंधित था, क्योंकि लिखित कथन में एेसे अभिवचन नहीं किए गए थे ना ही ऐसा विवाद्यक विरचित किया गया था ना ही विचारण न्यायालय एवं उच्च न्यायालय में ऐसा तर्क उठाया गया था। इस न्यायालय के समक्ष मामले के कथनों में भी ऐसा कोई अभिवचन नहीं उठाया गया है। (593 एफ-एच; 594 सी-डी]

(डी) किन्तू अपीलार्थी के प्रतिनिधियों एवं प्रत्यर्थी के बीच आयोजित बैठक के विवरण यह दर्शाते हैं कि प्रत्यर्थी ने मार्च 1948 से पूर्व पंजाब प्रांत के खाते में नामे राशि के केवल 40% ही मांग करना तय किया था।

प्रत्यर्थी ने ऐसा नहीं कहा था कि 40% राशि वसूल करने का निर्णय इस शर्त के अधीन था कि अपीलार्थी विक्रेता को अदायगी करे। बैठक के विवरण को दो भागों में बाँटा जा सकता हैः- (1) अपीलार्थी के दायित्व को 40% तक सीमित करना व (2) विक्रेता को देय राशि का अपीलार्थी द्वारा

भुगतान, किन्तू प्रथम भाग की पालना द्वितीय भाग की पालना पर निर्भर नहीं करती। पत्र एवं पश्चातवर्ती आचरण यह दर्शाते हैं कि अपीलार्थीगण की सहमति नहीं होने के बावजूद प्रत्यर्थी अपने पास अपीलार्थी की जमा राशि एेसे विक्रेता को भुगतान करता रहा था, दर्शाता है कि विक्रताओ को भुगतान का आग्रह करने के बजाय प्रत्यर्थी अपीलार्थी के प्रस्ताव पर कार्य कर रहा था कि विक्रेता को प्रत्यर्थी द्वारा उस राशि में से भुगतान किया जावे जो उसके पास अपीलार्थी की जमा थी। इसलिए प्रत्यर्थी ने केवल 40% ना कि अधिक राशि वसूल करना तय किया, इससे संविदा अधिनियम 1872 की धारा 63 के तहत अपीलार्थी द्वारा देय दायित्व के भाग को त्यागना या माफ करना माना जावेगा तथा इसके लिए यह आवश्यक नहीं है कि ऐसा माफ किया जाना प्रतिफल से समर्थित हो। चूँकि स्वीकृत रूप से पूरे दायित्व का 40% से अधिक, अपीलार्थी को पहले ही चुकाया जा चुका था एवं अपीलार्थी के उपर कोई बकाया नहीं है, अतः अपील स्वीकार की जानी चाहिए।[593 ए-बी, जी-एच; 596 ए-सी, एफ-एच; 597 ए-बी]

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार:- सिविल अपील संख्या 909/1967

उच्च न्यायालय पंजाब, चंडीगढ़ 1960 की नियमित प्रथम अपील संख्या 216 के फैसले और डिक्री से प्रमाण पत्र द्वारा दिनांक 1 अप्रैल 1966 से।

डी. वी. पटेल, पी. सी. भरतरी, जे. बी. दादाचंजी, ओ. सी. माथुर, और रविंदर नारायण अपीलार्थी की ओर से

वी. एम. तारकुंडे, हरबंस सिंह और आर. एन. सच्ते उत्तरदाताओं की ओर से।

न्यायालय का निर्णय न्यायाधीश द्विवेदी द्वारा पारित किया गया।

इस अपील की तथ्यात्मक रूपरेखा ब्रिटिश काल एवं अस्थायी रूप से 1944 से जून 1947 के दौरान के भारत के अविभाजित भूगोल से पैदा होती है। यहाँ पर तीन अपीलार्थी हैं:-

(1) मैसर्स हरि चंद मदन गोपाल एंड कंपनी, (2) हरि चंद और (3) श्री राम, प्रथम अपीलार्थी एक साझेदारी फर्म है, जिसके अन्य दो अपीलार्थी भागीदार हैं। 1944 में किसी समय प्रथम अपीलार्थी और पंजाब प्रांत (इसके बाद इसे अविभाजित पंजाब से सम्बोधित किया जाएगा) की सरकार के बीच एक समझौता हुआ। उस समझौते के द्वारा, कमीशन के भुगतान पर अविभाजित पंजाब की ओर से खाद्यान्न की बिक्री और खरीद के लिए समासोधन अभिकर्ता (खाद्यान्न) के रूप में कार्य करने के लिए प्रथम अपीलार्थी सहमत हुआ। प्रथम अपीलार्थी ने उन जिलों के, जो अगस्त 1947 में भारत के विभाजन के बाद पूर्वी पंजाब राज्य में शामिल थे और अब पंजाब राज्य में शामिल हैं, के राशनिंग नियंत्रकों से चावल का भण्डार

प्राप्त किया। पंजाब राज्य (वादी-प्रत्यर्थी) के अनुसार उक्त राशनिंग नियंत्रकों द्वारा आपूर्ति किए गए भण्डार की कीमत रु. 12,15,178/4/11 थी। भण्डार की आपूर्ति मई और जून 1947 में की गई थी। पहले अपीलकर्ता ने उक्त भण्डार को दिल्ली और संयुक्त प्रांत (जिसे अब उत्तर प्रदेश कहा जाता है) में व्यक्तियों को बेच दिया।वादी तीन राशियों की प्राप्ति स्वीकार करता है: (1) 2,91,817/13/111/2 रुपये की राशि, (2) दिल्ली और उत्तर प्रदेश में विभिन्न खरीदारों से एकत्र की गई 2,67,963/10/1 रुपये की राशि। प्रथम अपीलकर्ता ने जिसको भण्डार बेचा था, और (3) प्रथम अपीलकर्ता द्वारा 20,000/- रुपये की राशि का भुगतान किया गया था। इस प्रकार प्राप्तियों का कुल योग 5,79,841/81/2 रुपये है। कुल देय राशि में से कुल राशि घटाने पर भी 6,03,897/-/9 रुपये बकाया है। वादपत्र के पैराग्राफ 9 में यह आरोप लगाया गया है कि 29 जुलाई, 1953 को अपीलकर्ताओं ने उक्त राशि का भुगतान करने के लिए अपनी देनदारी स्वीकार की।

तीसरा अपीलकर्ता उपस्थित नहीं हुआ। विचारण न्यायालय में उनके खिलाफ एकपक्षीय मामला चला।

अपीलकर्ता संख्या 1 और 2 ने 15 जून, 1957 को अपना पहला संयुक्त लिखित कथन दायर किया। उन्होंने दलील दी कि 1944 के समझौते के तहत सभी अधिकार और देनदारियां पश्चिमी पंजाब सरकार के पक्ष में

अर्जित हुई हैं, जो पाकिस्तान का हिस्सा है और प्रतिवादी को वाद करने का कोई अधिकार नहीं है। उन्होंने यह भी दलील दी कि 28 और 29 जुलाई, 1953 को प्रत्यर्थी और प्रथम अपीलकर्ता के प्रतिनिधियों के बीच हुई बैठक में, प्रत्यर्थी की ओर से यह स्वीकार किया गया कि प्रथम अपीलकर्ता कुल राशि में से केवल 40% का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी था। यह कहा गया है कि प्रत्यर्थी के अनुसार कुल देनदारी का 40%, रुपये 5,00,085/12/- थे किन्तू प्रथम अपीलकर्ता के अनुसार यह केवल 47,327/6/9 रुपये थी। जैसा कि वादी ने वाद में स्वीकार किया है कि उसने उनसे और उनकी ओर से 5,79,841/8/1/2 रुपये प्राप्त किए हैं, प्रथम अपीलकर्ता के पक्ष में 59,695/12/1/2 रुपये की राशि जमा थी। लिखित कथन में कहा गया है कि पहले अपीलकर्ता के अनुसार जमा राशि 86,510/1/3 रुपये होगी। लिखित कथन में यह दावा किया गया है कि अपीलकर्ताओं को कुछ भी देय नहीं था। लिखित कथन इस बात से इनकार करता है कि अपीलकर्ता संख्या 1 और 2 ने 29 जुलाई 1953 को सरकार के प्रतिनिधियों और अपीलकर्ताओं के बीच हुई बैठक में किसी भी राशि का भुगतान करने के अपने दायित्व को स्वीकार किया।

अपीलकर्ताओं संख्या 1 और 2 ने 2 जून, 1959 को एक और लिखित कथन दायर किया। इस लिखित कथन में उन्होंने पहले लिखित कथन के अपने अभिवचनों को दोहराया। उन्होंने यह भी जोडा कि

मध्यस्थता न्यायाधिकरण के अध्यक्ष के 17 मार्च, 1948 के फैसले (पंचाट) ने अविभाजित पंजाब की संपत्तियों और देनदारियों के संबंध में पूर्वी पंजाब और पश्चिमी पंजाब के बीच वित्तीय समायोजन का अनुपात 40%:60 निर्धारित किया और तदनुसार प्रत्यर्थी, अपीलकर्ताओं द्वारा देय राशि में से केवल 40% पाने का हकदार था।

विचारण न्यायालय ने प्रत्यर्थी के वाद 5,53,897/-/9 रुपये की राशि के लिए डिक्री किया। अपील पर पंजाब उच्च न्यायालय ने डिक्रीटल राशि को घटाकर 3,23,897/-/9 रुपये कर दिया। उच्च न्यायालय के फैसले और डिक्री से संतुष्ट न होकर अपीलार्थी संख्या 1 और 2 ने यह अपील दायर की है।

अब वह कानूनी पृष्ठभूमि निर्धारित करना आवश्यक है जिसके विरुद्ध अपीलकर्ता के दो तर्कों की जांच की जानी चाहिए।18 जुलाई, 1947 को, ब्रिटिश संसद ने भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, 1947 को अधिनियमित किया। धारा 1 (2) अभिव्यक्ति "नियत दिन" को 15 अगस्त, 1947 के रूप में परिभाषित करती है। उक्त तिथि पर दो स्वतंत्र अधिराज्यों का जन्म हुआ। भारत अधिराज्य और पाकिस्तान अधिराज्य। अविभाजित भारत को दो अधिराज्यों के बीच विभाजित किया गया था। परिणामस्वरूप, अविभाजित पंजाब दो प्रांतों में विभाजित हो गया, एक को पश्चिमी पंजाब प्रांत और दूसरे को पूर्वी पंजाब प्रांत कहा गया। धारा 9 (1) (बी) ने

गवर्नर-जनरल को नए अधिराज्यों के बीच, और नए प्रांतों के अधिकारों और काउंसिल में गवर्नर-जनरल और संबंधित प्रांतों, जिनका अस्तित्व समाप्त हो गया था, के अधिकारों और देनदारियों के बीच विभाजन के आदेश देने में सक्षम बनाया । धारा 9 की उपधारा (2) में प्रावधान किया गया है कि धारा 9(1)(बी) द्वारा गवर्नर-जनरल को प्रदत्त शक्ति का प्रयोग, उनके संबंधित प्रांतों के संबंध में, उन प्रांतों के गवर्नरों द्वारा भी किया जा सकता है जो निर्धारित तिथि पर अस्तित्व में नहीं रहेंगे।

14 अगस्त, 1947 को, गवर्नर-जनरल ने धारा 9 (1) (बी) के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए, एक आदेश जारी किया, जिसे भारतीय स्वतंत्रता (अधिकार, संपत्ति और दायित्व) आदेश, 1947 (इसके बाद गवर्नर -जनरल का आदेश कहा जाएगा) जारी किया। यह तुरंत लागू हो गया। आदेश के खंड 3 (1) में प्रावधान है कि आदेश के प्रावधान भारत और पाकिस्तान के अधिराज्य की स्थापना के परिणामस्वरूप अधिकारों, संपत्ति और देनदारियों के प्रारंभिक वितरण से संबंधित हैं। यह आदेश मध्यस्थता न्यायाधिकरण द्वारा दिए जाने वाले किसी भी पंचाट के अधीन प्रभावी होगा। खंड 8(3) हमारे उद्देश्यों के लिए महत्वपूर्ण है और इसे विस्तार में पुनः प्रस्तुत किया गया है;

> "8(3) नियत दिन से पहले पंजाब प्रांत की ओर से किया गया कोई भी अनुबंध, उस दिन से -

(ए) यदि अनुबंध उन उद्देश्यों के लिए है जो उस दिन से विशेष रूप से पूर्वी पंजाब प्रांत के उद्देश्य हैं, तो इसे पंजाब प्रांत के बजाय उस प्रांत की ओर से किया गया माना जाएगा और

(बी) किसी अन्य v स्थिति में पंजाब प्रांत के बजाय पश्चिम पंजाब प्रांत की ओर से बनाया गया माना जाएगा; और

सभी अधिकार और देनदारियां जो ऐसे किसी अनुबंध के तहत अर्जित हुई हैं या हो सकती हैं, जिस हद तक वे पंजाब के प्रांतों के अधिकार या देनदारियां होतीं, वे पूर्वी पंजाब प्रांत या पश्चिम प्रांत के अधिकार या देनदारियां होंगी। पंजाब, जैसा भी मामला हो।"

उसी दिन, अविभाजित पंजाब के राज्यपाल ने धारा 9(2) के तहत एक आदेश जारी किया। इस आदेश को पंजाब विभाजन (अनुबंध) आदेश, 1947 (इसके बाद राज्यपाल का आदेश कहा जाएगा) कहा जाएगा।आदेश की प्रस्तावना में दूसरे पैराग्राफ में कहा गया है कि "जबकि अनुबंध, प्रलेख, पारस्परिक संविदा और इसके बाद के सभी अन्य मामलों जो संदर्भित किए जावेंगे, के संबंध में, पंजाब के राज्यपाल के अधिकारों और दायित्वों के दो नए प्रांतों के बीच विभाजन के लिए प्रावधान करना आवश्यक था। तदनुसार

राज्यपाल ने आदेश जारी किए थे। आदेश के खंड 2 (डी) का तात्विक भाग, जो इस मामले के लिए महत्वपूर्ण है, यहां दिया गया है:

> "2. नियत दिन से भारत सरकार अधिनियम, 1935 की धारा 175 के अनुसार पंजाब के राज्यपाल द्वारा या उनकी ओर से किया गया प्रत्येक अनुबंध, निष्पादित विलेख या प्रविष्ट पारस्पारिक संविदा उद्देश्यों के लिए, जहां तक सका संबंध है.
>
> (डी) दोनों नए प्रांतों के भीतर स्थित क्षेत्रों में या उनके लाभ के लिए प्रदान की जाने वाली सेवाओं के लिए यह माना जावेगा कि बनायी गई या निष्पादित की गई या प्रविष्ट किए गए अनुबंध, प्रलेख एवं पारस्परिक संविधाए पश्चिमी पंजाब प्रांत और पूर्वी पंजाब प्रांत के लिए अलग अलग हैं। जो ऐसी सेवाओं के संबंध में क्रमशः प्रभावी होते हैं जो पश्चिम पंजाब प्रांत या पूर्वी पंजाब प्रांत में या उनके लाभ के लिए प्रदान की जानी हैं और....."

अविभाजित पंजाब के राज्यपाल ने एक और आदेश जारी किया जिसे पंजाब विभाजन (संपत्ति और देनदारियों का बंटवारा) आदेश, 1947 कहा गया। आदेश के खंड 6 में प्रावधान था कि दो नए प्रांतों, पश्चिम पंजाब

और पूर्व पंजाब के बीच एक सामान्य वित्तीय समझौता, अविभाजित पंजाब की सभी संपत्तियों और देनदारियों के संबंध में जैसा कि वह नियत दिन से ठीक पहले मौजूद थी,होगा। इसमें आगे प्रावधान किया गया है कि आदेश के खंड 3 या खंड 4 के तहत दिए गए मध्यस्थ के किसी भी पंजाट को सामान्य वित्तीय निपटान करते समय ध्यान में रखा जाएगा। दोनों नए प्रांत वित्तीय समाधान के संबंध में किसी समझौते पर नहीं पहुंचे। इसलिए संघीय न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को मध्यस्थ नियुक्त किया गया। उन्होंने 17 मार्च, 1948 को अपना पंचाट दिया। पंचाट के अनुसार, कुल संपत्ति का 60% हिस्सा पश्चिम पंजाब प्रांत को और 40% हिस्सा पूर्वी पंजाब प्रांत को जाना था।

अपीलकर्ताओं के वकील का पहला तर्क इस प्रकार विकसित किया गया है: राज्यपाल के आदेश का खंड 2 (डी) एक निरंतर दायित्व वाले अनुबंध से संबंधित है, न कि पूर्ण अनुबंध के लिए। अपीलकर्ताओं और अविभाजित पंजाब के बीच एजेंसी का अनुबंध एक पूर्ण अनुबंध था। तदनुसार यह राज्यपाल के आदेश द्वारा शासित नहीं था। यह गवर्नर-जनरल के आदेश के खंड 8(3) द्वारा शासित था। राज्यपाल के आदेश का खंड 2 (डी) "प्रदान की जाने वाली सेवाओं" के लिए किए गए किसी भी अनुबंध से संबंधित है। स्पष्ट रूप से खंड 2 (डी) निरंतर दायित्वों वाले अनुबंधों से संबंधित है। वर्तमान मामले में लिखित अनुबंध रिकॉर्ड पर नहीं है, लेकिन

यह स्वीकार किया गया है कि अनुबंध मई और जून, 1947 के दौरान अस्तित्व में था जब अपीलकर्ताओं ने पूर्वी पंजाब के नए प्रांत में आने वाले जिलों (जो अब पंजाब प्रांत में शामिल हैं) के राशन नियंत्रकों से चावल का भण्डार लिया था। उस अवधि में जब एजेंसी का अनुबंध अस्तित्व में था, इसने अनुबंध करने वाले पक्षों के बीच प्रधान और अभिकर्ता का संबंध बनाया। उस रिश्ते ने उन पर आपसी दायित्व थोप दिए। अपीलकर्ता समाशोधन अभिकर्ता के रूप में कार्य करने और अविभाजित पंजाब के लिए खाद्यान्न खरीदने और बेचने की सेवा प्रदान करने के लिए बाध्य थे। जब तक अनुबंध लागू रहेगा तब तक सेवाएँ निष्पादित की जानी थीं। तदनुसार, यह नहीं कहा जा सकता कि अपीलकर्ताओं और अविभाजित पंजाब के बीच अनुबंध एक पूर्ण अनुबंध था।दूसरी ओर, यह एक अनुबंध था जिसने अपीलकर्ताओं पर एक अभिकर्ता की सेवाएं प्रदान करने का निरंतर दायित्व लगाया था।परिणामस्वरूप, राज्यपाल के आदेश का खंड 2 (डी) अनुबंध पर लागू होगा।

गला तर्क यह है कि गवर्नर-जनरल का आदेश और गवर्नर का आदेश एक ही क्षेत्र में हैं। भारत सरकार अधिनियम, 1935 की धारा 107 के सादृश्य, पूर्व आदेश बाद वाले आदेश पर प्रबल होगा।वकील ने इस तर्क के समर्थन में कई मामलों का उद्धरण लिया है। लेकिन उनका उल्लेख करना आवश्यक नहीं है क्योंकि हमारी राय है कि दोनों आदेश अतिछादित नहीं

हुए। वह अलग अलग क्षेत्रों पर लागू हैं। गवर्नर-जनरल के आदेश के खंड 8 (2), (3) और (4) पहले "पश्चिम बंगाल प्रांत", "पंजाब प्रांत" और "असम प्रांत" की ओर से नियत दिन से पहले किए गए किसी भी अनुबंध से संबंधित हैं। राज्यपाल के आदेश के खंड 2, 3, 4 और 7, विभिन्न संविधाए जो "भारत सरकार अधिनियम, 1935 की धारा 175 के अनुसार पंजाब के राज्यपाल द्वारा या उनकी ओर से किए गए" से सम्बंधित हैं या राज्यपाल के अधिकारों और दायित्वों से संबंधित है, जो उन अनुबंधों के तहत उत्पन्न होते हैं। दोनों आदेशों की पदावली में उपरोक्त अंतर उद्देश्यपूर्ण है। गवर्नर-जनरल के आदेश के खंड 8 (3) में "पंजाब प्रांत की ओर से" वाक्यांश से पता चलता है कि उस खंड में शासित किए गए अनुबंध वे अनुबंध थे जो धारा 177 (1) भारत सरकार अधिनियम, 1935 की विषय-वस्तु का गठन करते थे। उक्त धारा 177 (1) में प्रावधान है कि राज्य परिषद के सचिव द्वारा या उनकी ओर से उक्त अधिनियम के भाग III के प्रारंभ होने से पहले किया गया कोई भी अनुबंध, यदि उन उद्देश्यों के लिए बनाया जाता है, जो उस दिनाँक से, जो, उक्त अधिनियम के भाग III की शुरूआत से एक प्रांत की सरकार के उद्देश्यों के लिए माना जावेगा, इसका प्रभाव इस प्रकार होगा मानो इसे "उस प्रांत की ओर से" बनाया गया हो और ऐसे किसी भी अनुबंध में राज्य परिषद के सचिव के संदर्भ को उसी अनुसार समझा जाएगा। उस अधिनियम की धारा 179(1) के अनुसार, इस

तरह के अनुबंध को संबंधित प्रांत के खिलाफ एक वाद में लागू किया जा सकता है। इसलिए गवर्नर-जनरल के आदेश का खंड 8(3) मार्च 1937 से पहले पंजाब प्रांत के प्रयोजनों के लिए राज्य परिषद के सचिव द्वारा या उनकी ओर से किए गए अनुबंधों से संबंधित था, जब भारत सरकार अधिनियम, 1935 का भाग III प्रभाव में लाया गया था।मार्च 1937 के बाद भारत सरकार अधिनियम, 1935 की धारा 175 (3) के तहत पंजाब के राज्यपाल द्वारा या उनकी ओर से किए गए अनुबंधों से खंड 8 (3) का कोई लेना-देना नहीं है। राज्यपाल के आदेश का खंड 2 (डी) धारा 175(3) के तहत राज्यपाल द्वारा या उनकी ओर से किए गए अनुबंधों से संबंधित है। इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि गवर्नर-जनरल के आदेश के खंड 8 (3) और राज्यपाल के आदेश के खण्ड 2(डी) के संचालन के क्षेत्र अलग और असमान थे। वे अतिछादित नहीं हुए और उनके बीच कोई संघर्ष नहीं हुआ।

त्रिपुरा राज्य बनाम पूर्वी बंगाल प्रांत (1951 एससीआर 1) में इस न्यायालय ने गवर्नर-जनरल के आदेश के खंड (1) में "अनुबंध के उल्लंघन के अलावा किसी भी कार्रवाई योग्य गलती के संबंध में कोई दायित्व" वाक्यांश का अर्थ लगाया। गवर्नर जनरल के आदेश के खण्ड (1) में पहले से शुरू किए गए गलत या अनधिकृत कार्य को पूरा करने से निषेधाज्ञा द्वारा रोका जाने वाला दायित्व भी शामिल है। इस मामले में जिस प्रश्न पर

निर्णय लेने के लिए हमें बुलाया गया है, उस पर उस मामले में विचार नहीं किया गया था। वकील ने न्यायालय की इस टिप्पणी पर जोर दिया कि "जहां तक इस्तेमाल की गई भाषा की बात है, आदेश की शर्तों पर एक व्यापक और उदार अर्थान्वयन किया जाना चाहिए ताकि जिन मामलों पर विचार किया जाना है, उनके संबंध में कोई कमी या दूरी न रह जाए।" यह समझना मुश्किल है कि गवर्नर-जनरल के आदेश के खंड 8 (3) की भाषा का हम जो अर्थान्वयन कर रहे हैं, उसके आधार पर यह टिप्पणी अपीलकर्ताओं को कैसे मदद करती है। पश्चिम बंगाल राज्य बनाम शेख सेराजुद्दीन बटले (1954 एससीआर 378) में बंगाल प्रांत ने 6 फरवरी 1947 को कुछ परिसर पट्टे पर ले लिए। 1800/- रुपये का मासिक किराया देने पर सहमत हुई। जिन उद्देश्यों के लिए पट्टा दिया गया था वे विशिष्ठ रूप से 15 अगस्त 1947 के बाद पश्चिम बंगाल के उद्देश्य थे। यह माना गया कि राशि का भुगतान करने का दायित्व गवर्नर जनरल के आदेश के खण्ड 09 द्वारा अपेक्षित "वित्तीय दायित्व" नहीं था और पश्चिम बंगाल सरकार उक्त आदेश के 18 (2) (ए) के तहत 15 अगस्त 1947 तक अर्जित किराए का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी थी। ऐसा प्रतीत नहीं होता है कि बंगाल प्रांत के राज्यपाल ने वर्तमान मामले के राज्यपाल के आदेश की प्रकृति का कोई आदेश दिया था। किसी भी स्तर पर, न्यायालय के सामने ऐसे किसी आदेश का उल्लेख नहीं किया गया। इसके विपरीत, रिपोर्ट के

पृष्ठ 382 पर यह कहा गया है कि पश्चिम बंगाल के महाधिवक्ता ने निष्पक्ष रूप से और स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि किसी और चीज के अभाव में वह मामला पूरी तरह से अनुच्छेद 8 (2) (ए) के तहत माना जाएगा, लेकिन उन्होंने तर्क दिया कि अनुच्छेद 8 (6) के आधार पर यह अनुच्छेद, अनुच्छेद 9 के प्रावधानों के अधीन प्रभावी होना था। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मामले का निर्णय महाधिवक्ता द्वारा दी गई रियायत पर किया गया था और जो प्रश्न हमारे सामने उठा है, वह वहाँ नहीं उठा था। भारत संघ बनाम चमन लाल लूना, 1957 एससीआर 1039 में अनुबंध काउंसिल के गवर्नर-जनरल की ओर से किया गया था और हमारे सामने उठने वाला प्रश्न वहां नहीं उठा था। पश्चिम बंगाल राज्य बनाम बृंदाबन चंद्र प्रमाणिक, एआईआर 1957 कलकत्ता 44 में द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान पश्चिम बंगाल प्रांत द्वारा भारत की रक्षा नियमों के तहत कुछ धान की मांग की गई थी। मुआवजे की राशि का आकलन भारत रक्षा नियम के नियम 75-ए के तहत किया गया था। उस राशि का भुगतान बंगाल प्रांत द्वारा नहीं किया गया था। विभाजन के बाद पश्चिम बंगाल प्रांत के विरुद्ध वाद संस्थित किया गया। कलकत्ता उच्च न्यायालय ने माना कि गवर्नर-जनरल के आदेश के खण्ड 10 (2) के अनुसार, पश्चिम बंगाल प्रांत उस वादी को राशि का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी था जिसका धान मांगा गया था।उस मामले में भी हमारे सामने जो प्रश्न उत्पन्न हुआ है, उस पर निर्णय लेने के लिए उच्च

न्यायालय से मांग नहीं की गई थी। फैसले में बंगाल प्रांत के राज्यपाल द्वारा दिए गए किसी आदेश का कोई संदर्भ नहीं है। सिंधिया स्टीम नेविगेशन कंपनी लिमिटेड बनाम भारत संघ,(1962) 3 एससीआर 412 में परिषद के गवर्नर-जनरल द्वारा किया गया था। वहां वह सवाल ही नहीं उठा था जो हमारे सामने है.उपरोक्त निर्णयों में से कोई भी इस मामले में अपीलकर्ताओं की सहायता नहीं करता है।

फिर यह प्रस्तुत किया गया कि अपीलकर्ताओं और प्रतिवादी के बीच एजेंसी का अनुबंध एक एकल और अविभाज्य अनुबंध था और अपीलकर्ताओं के खिलाफ वाद संस्थित करने के उद्देश्य से सरकार की इच्छा पर इसे विभाजित नहीं किया जा सकता था। यह तर्क राज्यपाल के आदेश के 2(डी) के तहत पूरी तरह से नकारात्मक है। राज्यपाल के आदेश के खंड 2 (डी) में प्रावधान है कि भारत सरकार अधिनियम, 1935 की धारा 175 के अनुसार पंजाब के राज्यपाल द्वारा किया गया कोई भी जो अनुबंध प्रदान की जाने वाली सेवाओ से सम्बंधित है, जहां तक वह अन्य बातों के साथ-साथ " दोनों नये प्रांतों में स्थित क्षेत्रों में से उसके फायदे के लिए पश्चिम पंजाब प्रांत और पूर्वी पंजाब प्रांत के साथ दो अलग-अलग अनुबंधों के रूप में किया, निष्पादित या दर्ज किया गया माना जाएगा।''ऐसे प्रत्येक अलग अनुबंध का प्रभाव केवल "ऐसी सेवाओं के संबंध में होगा जो पश्चिम बंगाल या पूर्वी पंजाब प्रांत में या उनके लाभ के लिए प्रदान की

जानी हैं।" जाहिर तौर से खण्ड 2 (डी) में ही एक एकल और अविभाज्य अनुबंध को दो अलग-अलग अनुबंधों में विभाजित करने का प्रावधान किया गया है।

अंत में, यह प्रस्तुत किया गया है कि सरकार अपीलकर्ताओं से कुल देनदारी का केवल 40% ही वसूल कर सकती है। यह तर्क कई तरह से रखा गया था। सबसे पहले, यह बताया गया है कि 7 मार्च 1948 को भारत के मुख्य न्यायाधीश के मध्यस्थता पंचाट ने अविभाजित पंजाब की कुल संपत्ति को पश्चिमी पंजाब और पूर्वी पंजाब के बीच 60:40% के अनुपात में वितरित किया था। नतीजतन, सरकार अपीलकर्ताओं से उनके द्वारा देय कुल बकाया राशि में से केवल 40% की वसूली कर सकती है। जैसा कि स्वीकार किया गया है कि सरकार ने 40% से अधिक की वसूली कर ली है, अपीलकर्ताओं का कुछ भी बकाया नहीं है। विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय ने इस दलील को नहीं माना। हम भी इसे स्वीकार नहीं कर पा रहे हैं। मध्यस्थता पंचाट से पश्चिमी पंजाब और पूर्वी पंजाब के बीच वित्तीय समायोजन हुआ। यह एक या दूसरे प्रांत के अपीलकर्ताओं जैसे तीसरे पक्षों की देनदारियों से नहीं निपटता है। इसने यह निर्देश नहीं दिया कि किसी तीसरे पक्ष द्वारा देय कोई भी राशि उसकी कुल देनदारी के केवल 40% की सीमा तक ही वसूल की जा सकती है। पंचाट के अनुसार, यदि अपीलकर्ताओं से 40% से अधिक की वसूली की जाती है, तो 40% से

अधिक की राशि पश्चिमी पंजाब की सरकार द्वारा को देय होगी। दूसरे, यह कहा गया है कि सरकार और अपीलकर्ताओं के बीच एक समझौते के आधार पर, सरकार बकाया द्वारा देय राशि में से केवल 40% की वसूली अपीलकर्ता से कर सकती है। विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय ने पाया है कि पक्षों के बीच कोई समझौता नहीं हुआ और हम उनसे सहमत हैं। तथाकथित समझौता अपीलकर्ताओं द्वारा 17 जनवरी, 1951 को लिखे गए दो पत्रों के आधार पर माना गया था। इनमें से एक पत्र पंजाब के खाद्य, नागरिक आपूर्ति निदेशक द्वारा पहले अपीलकर्ता को लिखा गया था और प्रथम अपीलार्थी की ओर से द्वितीय अपीलार्थी द्वारा दिया गया उत्तर था। निदेशक के पत्र का विषय-वस्तु "खातों का निपटान" है। पत्र इस कथन के साथ शुरू होता है कि "आपकी अभिकरण के खिलाफ सरकार और सभी विक्रेताओं के दावों के निपटान के सवाल पर कुछ सरकारी प्रतिनिधियों और दूसरे अपीलकर्ता हरिचंद की उपस्थिति में विस्तार से चर्चा की गई है"। पत्र के दूसरे पैराग्राफ में प्रासंगिक रूप से कहा गया है: "ऐसा प्रतीत होता है कि इन दावों का निपटान निम्नलिखित तरीके से संभव होगा:

> "(ए) इस सरकार को मार्च 1948 से पहले संयुक्त पंजाब खाते में नामे की गई राशि में से केवल 40% की वसूली करनी चाहिए और जिन विक्रेताओं की ओर से सरकार द्वारा

राशि की वसूली की गई है, उन्हें खाद्य लेखा नियंत्रक के माध्यम से समासोधन अभिकर्ताओ द्वारा भुगतान किया जाना चाहिए और समाशोधन अभिकर्ताओ के विरुद्ध समिति द्वारा निर्णय की गई शेष राशि का भुगतान समाशोधन अभिकर्ताओ द्वारा सीधे किया जा सकता है।"

अनुच्छेद 3 अनुरोध: "कृपया पुष्टि करें कि क्या आप निपटान की इस पद्धति से सहमत हैं।" यह कहा गया है कि सरकार और विक्रेताओं को देय राशि का वास्तविक विवरण अपीलकर्ताओं को बाद में "उपरोक्त आपकी स्वीकृति प्राप्त होने पर" प्रदान किया जाएगा। दूसरे अपीलकर्ता ने अपने उत्तर पत्र में कहा: "हम आपके द्वारा किए गए पत्र में सन्निहित व्यवस्थाओं की पुष्टि.....निम्नलिखित संशोधनों..... के अधीन करते हैं। आप राशनिंग नियंत्रक द्वारा आपूर्ति किए गए चावल के कारण हमारे द्वारा प्राप्त राशि में से 40% के आधार पर वसूली के हकदार होंगे (2) उन विक्रेताओं को शेष राशि वितरित करने के बाद जिनकी आपूर्ति के लिए आपने हमारे खाते के पेटे राशि प्राप्त कर ली है, शेष राशि का उपयोग हमारी एजेंसी के खिलाफ अन्य विक्रेताओं के दावों के निपटान के लिए किया जाएगा।''

यह ध्यान दिया जा सकता है कि अपीलकर्ताओ के लिखित कथन के पैराग्राफ 3 में यह दलील दी थी कि 17 जनवरी, 1951 का समझौता "बिना किसी पूर्वाग्रह के" था। वाक्यांश "बिना किसी पूर्वाग्रह के" से पता चलता है

कि उन्होंने अपने अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना समझौते को स्वीकार कर लिया था। यह कोई अभिवचन नहीं है कि दोनों पक्षों के बीच कोई पक्का समझौता हो गया है। निदेशक के पत्र से स्पष्ट है कि उन्होंने अपीलकर्ताओं को केवल सरकार और विक्रेताओं के दावों के निपटान के लिए एक प्रस्ताव दिया था। प्रस्ताव में दो आवश्यक और अविभाज्य शर्तें शामिल थीं। यह अनुमान कि पत्र में अपीलकर्ता को एक प्रस्ताव दिया गया था, पत्र में ऐसे वाक्यांशों द्वारा समर्थित है जैसे "कृपया पुष्टि करें कि क्या आप निपटान की इस पद्धति से सहमत हैं", और "उपरोक्त के रूप में आपकी स्वीकृति प्राप्त होने पर।" दो शब्दों का अविभाज्य चरित्र ऐसी अभिव्यक्तियों से आता है जैसे "आपकी एजेंसी के खिलाफ सरकार और विक्रेताओं के दावों के निपटान के प्रश्न पर चर्चा की गई है," और "इन दावों का निपटान निम्नलिखित तरीके से संभव होगा। "हरिचंद के जवाबी पत्र में निदेशक के प्रस्ताव को बिना शर्त स्वीकार नहीं किया गया। इसके बजाय, उन्होंने एक वैकल्पिक प्रस्ताव रखा। निदेशक के पत्र के अनुसार, सरकार मार्च 1948 से पहले संयुक्त पंजाब खाते में नामे की गई राशि में से 40% की वसूली कर सकती थी: हरिचंद के उत्तर के अनुसार सरकार, अपीलकर्ताओं द्वारा राशन नियंत्रक द्वारा आपूर्ति किए गए चावल के कारण प्राप्त राशि में से 40% की वसूली कर सकती थी। निदेशक के प्रस्ताव के अनुसार, अपीलकर्ताओं को विक्रेताओं को भुगतान करना चाहिए, जिनकी

ओर से सरकार द्वारा खरीददारों से कुछ राशि वसूल की गई थी। उन्हें उन विक्रेताओं को भी भुगतान करना चाहिए जिन्हें दिल्ली समिति के निर्णय के अनुसार भुगतान किया जाना था। दूसरी ओर,हरिचंद नेसुझाव दिया कि सरकार द्वारा वसूले गए 40% से अधिक का भुगतान उन विक्रेताओं को किया जाना चाहिए जिनके लिए सरकार ने राशि वसूल की है और शेष राशि, यदि कोई हो, का उपयोग शेष विक्रेताओं को भुगतान करने में किया जाना चाहिए । निदेशक द्वारा प्रस्तावित शर्तों और हरिचंदद्वारा प्रस्तावित वैकल्पिक शर्तों के बीच स्पष्ट रूप से पर्याप्त अंतर है ।यह तर्क नहीं दिया गया है कि सरकार नेहरिचंद के वैकल्पिक प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया था।परिणाम में, हमारी राय है कि पार्टियों के बीच कोई समझौता नहीं हुआ। बात प्रस्ताव और प्रतिप्रस्ताव के स्तर से आगे नहीं बढ़ी.यह अनुमान निदेशक, खाद्य और नागरिक आपूर्ति, खाद्य लेखा नियंत्रक और महानिदेशक, खाद्य और नागरिक आपूर्ति द्वारा अपीलकर्ताओं को भेजे गए तीन पत्रों क्रमशः दिनांक 22 सितंबर, 1951, 22 नवंबर, 1951 और 18 सितंबर, 1952 द्वारा समर्थित है। इन सभी पत्रों में इस बात पर जोर दिया गया है कि अपीलकर्ताओं को विक्रेताओं के दावों का निपटान करना चाहिए। अपीलकर्ताओं को उन पत्रों में "निपटान" शब्द से कोई लाभ नहीं मिल सकता है।हम इस बात से संतुष्ट हैं कि उक्त शब्द का उसमें शिथिल प्रयोग किया गया है।

तीसरा, यह कहा गया है कि जैसा कि सरकार ने अपीलकर्ताओं को बताया था कि वह संयुक्त पंजाब खाते में नामे की गई राशि में से केवल 40% की वसूली करेगी, अब वह किसी भी अधिक राशि का दावा करने से विबंधित है। इस स्तर पर यह तर्क नहीं उठाया जा सकता। 15 जनवरी, 1957 और 2 जून, 1959 को दायर किए गए अपने दो लिखित बयानों में अपीलकर्ताओं द्वारा विबन्ध बाबत अभिवचन नहीं किया था। विबन्ध पर कोई विवाद्यक नहीं बनाया गया था। विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय में अपीलकर्ताओं द्वारा विबन्ध पर आधारित कोई तर्क नहीं दिया गया था। इस न्यायालय में अपीलकर्ताओं द्वारा दायर मामले के कथनों में भी यह तर्क नहीं उठाया गया है। चूँकि हम अपीलकर्ताओं को सुनवाई के चरण में विबन्ध का बचाव उठाने की अनुमति नहीं दे रहे हैं, इसलिए भारत संघ व अन्य बनाम मैसर्स इंडो-अफगान एजेंसीज लिमिटेड(1968) 2 एससीआर 366)और सेंचुरी एसपीजी। एंड एमएफजी. कंपनी लिमिटेड बनाम उल्हासनगर नगर परिषद, (1970) 3 एससीआर 854) के प्रकरणों को विचारण में लेना आवश्यक नहीं है।

चौथा, यह कहा जाता है कि चूंकि सरकार ने मार्च 1948 से पहले संयुक्त पंजाब खाते में नामे की गई राशि में से केवल 40% का दावा करने का निर्णय लिया था, इसलिए सरकार अब उस राशि से अधिक की वसूली नहीं कर सकती है। इस तर्क से निपटते समय, विचारण न्यायालय ने

कहा: "ये पत्र और फ़ाइल पर अन्य पत्र जिन्हें प्रतिवादियों के विद्वान वकील ने संदर्भित किया है, यह दर्शाते हैं कि सरकार ने ऐसा निर्णय लिया था।

"हालाँकि, विचारण न्यायालय ने इस तर्क को स्वीकार नहीं किया कि सरकार 40% से अधिक का दावा नहीं कर सकती। उच्च न्यायालय के निर्णय से ऐसा दर्शित नहीं होता है कि इस तर्क को उसके समक्ष दोबारा दोहराया गया था, क्योंकि उच्च न्यायालय के निर्णय में स्पष्ट रूप से इस पर विचार नहीं किया गया। यह तर्क 28 और 29 जुलाई, 1953 को शिमला में नियंत्रक, खाद्य लेखा के कार्यालय में आयोजित बैठक की कार्यवाही पर आधारित है। बैठक में प्रथम अपीलार्थी की ओर से द्वितीय अपीलार्थी एवं दूसरे साथी श्री राम उपस्थित थे। बैठक में भाग लेने वाले अन्य तीन व्यक्ति सरकारी प्रतिनिधि थे। उनमें से एक उपनियंत्रक, खाद्य लेखा थे। बैठक में उपनियंत्रक, खाद्य लेखा ने विवाद के इतिहास के बारे में बताया। उन्होंने कहा कि सरकार मार्च, 1948 से पहले संयुक्त पंजाब खाते में वास्तव में नामे की गई राशि में से 40% और विक्रेताओं के दावों के अपीलकर्ताओं द्वारा भुगतान का दावा कर रही थी, जिनके लिए सरकार ने पारेषितियों से कुछ राशि वसूल की थी। इसके बाद उन्होंने अपीलकर्ताओं का मामला बताया जो 17 जनवरी, 1951 के उनके उत्तर पत्र में उल्लेखित किया गया था, फिर उन्होंने कहा कि सरकार के अनुसार संयुक्त पंजाब खाते में नामे की गई राशि का 40% रु. 5,85,000/12/- था और

अपीलकर्ताओं के अनुसार 4,73,271/6/9 रुपये था। उन्होंने स्वीकार किया कि सरकार अपीलकर्ताओ की और से दो राशियों 2,92,102/11/9 और रु.2,67,963/10/1 की वसूली की है। इस प्रकार कुल वसूली 5,59,781/8/1/2 रूपये मानी गयी।फिर उन्होंने कहा कि समासोधन अभिकर्ताओ के पक्ष में सरकार के अनुसार शुद्ध जमा 59,695/12/1 1/2 रूपये है और समासोधन अभिकर्ताओ के अनुसार यह रु.86,510/1/3 1/2. है। इसके बाद उन्होंने जोडा कि उन्हें "उन सभी विक्रेताओं के सभी खातों का निपटान करना होगा जिनकी ओर से पंजाब सरकार ने पारेषितियाँ से पैसा वसूल किया है और दिल्ली समिति की कार्यवाही के अनुसार विभिन्न विक्रेताओं की बकाया पाई गई कमी राशि को सरकार को नकद भुगतान करके निपटान करना है।" उन्होंने यह कहते हुए समाप्त किया कि अपीलकर्ताओं ने कहा कि उन्होंने कुछ विक्रेताओं के खातों का निपटान कर दिया है और उन्होंने अगस्त, 1953 के तीसरे सप्ताह तक और अधिक विक्रेताओं के खातों का निपटान करने का वादा किया है। उनसे भुगतान प्राप्तकर्ताओं की प्राप्ति रसीदें विक्रताओ को किए गए भुगतान के समर्थन के लिए अपने साथ लाने के लिए कहा गया था।

बैठक के उपरोक्त कार्यवृत्त के निहितार्थों की जांच करते समय तीन बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है।एक, 31 मार्च, 1948 को पश्चिमी पंजाब सरकार के सचिव को महानिदेशक, खाद्य और नागरिक आपूर्ति के

पत्र से यह स्पष्ट है कि पूर्वी पंजाब सरकार को अपीलकर्ताओं की दयनीय दुर्दशा के प्रति बहुत सहानुभूति थी। पत्र में कहा गया है कि समासोधन अभिकर्ता मार्च, 1948 से पहले पंजाब सरकार के संयुक्त खातों में नामे की गई राशि का भुगतान करने में असमर्थ थे, क्योंकि वे पश्चिमी पंजाब से उखाड़ दिए गए थे, जहां उनके पास मिलों, कृषि भूमि और अन्य चल और अचल संपत्तियों के रूप में 27 लाख रुपये की भारी संपत्ति थी।, क्योंकि उनके द्वारा खाद्यान्न की आपूर्ति के कारण पश्चिम पंजाब सरकार से बड़ी रकम बकाया थी, क्योंकि उन्हें अन्य बकाया राशि भी देय थीजो पश्चिम पंजाब में थोक पक्का आहरटीज़ एसोसिएशन और सिंडिकेट में प्रतिभूतियों और शेयरों के रूप में थी, क्योंकि उनके द्वारा आपूर्ति किए गए खाद्य सामग्री के, अविभाजित पंजाब द्वारा उन्हें 7 लाख के कमीशन का भुगतान नहीं किया जा रहा था। ऐसा कहा जाता है कि उनकी वित्तीय कठिनाइयों के कारण सरकार ने निर्णय लिया था।उनके द्वारा देय 12,55,214/6/3 रूपये को अविभाजित पंजाब के संयुक्त खाते में नामे किया जाना चाहिए और विभाजन पूर्व अवधि से संबंधित और लाहौर में देय उन पर बकाया के पेटे सारी वसूली, संयुक्त खाते में जमा की जानी चाहिए। दूसरा, सरकार उन विक्रेताओं को भुगतान करने के लिए कानूनी रूप से उत्तरदायी नहीं थी जिनसे अपीलकर्ताओं ने चावल खरीदा था। राज्यपाल के सचिव श्री एचएस अचरेजा ने कहा है कि "विक्रेताओं को भुगतान करने के लिए सरकार की

कोई कानूनी देनदारी नहीं थी, जिनका माल शहादरा में विक्रेताओं के माध्यम से पारेषितियों की आपूर्ति किया गया था। सिंडिकेट ने सरकार के खिलाफ एक वाद दायर किया था। वह वाद खारिज कर दिया गया।"तीसरा, सरकार को अपीलकर्ताओं से वसूली का मात्र 40% हिस्सा मिलने की संभावना थी। इससे अधिक की वसूली से पश्चिम पंजाब को लाभ होने की संभावना थी। इसलिए सरकार बिना किसी नुकसान की संभावना के एक उदार निर्णय ले सकती है कि मार्च 1948 से पहले संयुक्त पंजाब खाते में नामे की गई राशि में से केवल 40% अपीलकर्ताओं से वसूल की जानी चाहिए।

प्रतिवादी के वकील के अनुसार, बैठक के कार्यवृत्त से पता चलता है कि उपरोक्त राशि में से केवल 40% की वसूली करने का निर्णय इस शर्त के अधीन था कि अपीलकर्ताओं को उन विक्रेताओं को भुगतान करना होगा जिनके लिए सरकार पहले ही परेषितियों से कुछ राशि वसूल कर चुकी है। हमें 28 और 29 जुलाई, 1953 को हुई बैठक के कार्यवृत्त से यह निष्कर्ष निकालने में कठिनाई हो रही है। निदेशक के 17 जनवरी, 1951 के पत्र की भाषा और उपरोक्त बैठक के कार्यवृत्त की भाषा में अंतर पर ध्यान देना महत्वपूर्ण है।पूर्व की भाषा स्पष्ट रूप से दर्शाती है कि अपीलकर्ताओं द्वारा विक्रेताओं को भुगतान प्रस्तावित निपटान का एक आवश्यक शर्त था। बैठक के कार्यवृत्त की भाषा से यह नहीं पता चलता कि विक्रेताओं को भुगतान की

पूर्ववर्ती शर्त वसूली की सीमा की 40% थी। बैठक के कार्यवृत्त को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है; (1) अपीलकर्ताओं के दायित्व को 40% तक सीमित करना, और (2) अपीलकर्ताओं द्वारा विक्रेताओं को देय राशि का भुगतान। पहला भाग दूसरे भाग के प्रदर्शन पर निर्भर नहीं है जैसा कि निदेशक के 17 जनवरी 1951 के पत्र में बताया गया है।

यह अनुमान सरकारी अधिकारियों के बाद के आचरण से समर्थित है। 17 जनवरी, 1951 के बाद, सरकार ने अपीलकर्ताओं को पत्र भेजकर संकेत दिया कि विक्रेताओं को भुगतान 17 जनवरी, 1951 के प्रस्तावित समझौते की एक आवश्यक शर्त थी। 28-29 जुलाई, 1953 के बाद अपीलकर्ता को एक समान पत्र कभी नहीं भेजा गया था। दूसरी ओर, निदेशक, खाद्य एवं नागरिक आपूर्ति के 21 अप्रैल, 1954 और 11 मई, 1954 के पत्रों से पता चलता है कि सरकार अपीलकर्ताओं के खाते में जमा राशि में से विक्रेताओं को भुगतान कर रही थी और उनसे एेसे भुगतान के लिए अपनी सहमति देने के लिए कह रही थी। निदेशक, खाद्य एवं नागरिक आपूर्ति ने 21 अप्रैल, 1954 को अपीलकर्ताओं को पांच पत्र भेजे। वे डी-6 से डी-11 तक प्रदर्शित हैं। उनमें से प्रत्येक में उन्होंने कहा है कि यदि एक पखवाड़े के भीतर कोई उत्तर नहीं मिला, तो यह माना जाएगा कि अपीलकर्ता पत्रों में उल्लिखित विक्रेताओं को भुगतान करने के लिए सहमत थे। अपीलकर्ताओं ने 3 मई, 1954 को उन पाँच पत्रों का उत्तर दिया। उन्होंने कहा कि जब तक उनके

विभाजन के बाद के लेन-देन का विस्तृत विवरण उन्हें उपलब्ध नहीं कराया जाता, तब तक निदेशक के पत्रों का उत्तर देना संभव नहीं होगा। निदेशक से खातों की पूरी प्रति भेजने का अनुरोध किया गया। 11 मई, 1954 के अपने उत्तर पत्र में, निदेशक ने कहा कि अपीलकर्ताओं को 28 और 29 जुलाई, 1953 की बैठक में खातों का विवरण पहले ही दे दिया गया था। उन्होंने यह कहकर निष्कर्ष निकाला कि यदि 20 मई 1954 तक उन्हें कोई उत्तर नहीं मिला, यह माना जाएगा कि उन्हें विक्रेताओं को किए गए भुगतान पर कोई आपत्ति नहीं थी और "यह कार्यालय संबंधित पक्षों को भुगतान करने के लिए आगे बढ़ेगा।" इन पत्रों से संकेत मिलता है कि अपीलकर्ताओं की सहमति के अभाव के बावजूद, सरकार विक्रेताओं को अपीलकर्ताओं के खाते में जमा राशि से भुगतान कर रही थी। इन पत्रों से पता चलता है कि अपीलकर्ताओं द्वारा विक्रेताओं को भुगतान पर जोर देने के बजाय, सरकार 17 जनवरी, 1951 के अपीलकर्ताओं के प्रस्ताव को स्वीकार कर रही थी और उसके अनुसार कार्य कर रही थी कि विक्रेताओं को सरकार द्वारा उसके पास मौजूद अपीलकर्ताओ के धन से भुगतान किया जाना चाहिए।

उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, हमारा विचार है कि सरकार ने केवल 40% की वसूली करने का निर्णय लिया है, इससे अधिक की नहीं। सरकार का निर्णय अपीलकर्ताओं द्वारा देय ऋण के एक हिस्से को माफ करने के

समान होगा। अनुबंध अधिनियम की धारा 63 के तहत, वादा करने वाला व्यक्ति अपने वादे को आंशिक रूप से माफ कर सकता है। अनुबंध अधिनियम के तहत यह आवश्यक नहीं है कि ऐसा त्याग, प्रतिफल से समर्थत हो। यदि सरकार का निर्णय ऋण के एक हिस्से को माफ करने के बराबर है, जैसा कि हम सोचते हैं, तो सरकार 40% से अधिक की वसूली नहीं कर सकती है। स्वीकृत रूप से कुल देनदारी का 40% से अधिक हिस्सा सरकार को पहले ही चुकाया जा चुका है। इसलिए अपीलकर्ताओं का कुछ भी बकाया नहीं है।

उपरोक्तानुसार हम अपील को स्वीकार करते हैं और सरकार के दावे को खारित करते हैं। प्रकरण की विशिष्ठ परिस्थितियों को देखते हुए इस दौरान अपीलकर्ता को कोई खर्चा नहीं मिलेगा।

वी.पी.एस. अपील अस्वीकार

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक प्रहलाद राय शर्मा (आर.जे.एस) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित कि या गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं कि या जासकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा ।

***